Vol. 7, Issue 4, January 2018 ISSN 2249-894X

REVIEW OF RESEARCH

An International Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

Impact Factor: 5.2331

UGC Approved Journal No. 48514

Chief Editors
Dr. Ashok Yakkaldevi
Ecaterina Patrascu
Kamani Perera

Associate Editors
Dr. T. Manichander
Sanjeev Kumar Mishra

REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2018

समकालीन हिन्दी नाटक और आधुनिकता बोध

डॉ. गोपीराम शर्मा
सहायक प्रोफेसर हिन्दी , डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

उद्देश्य (Objetivies) –

इस शोध का उद्देश्य समकालीन हिन्दी नाटकों का परिचय प्राप्त करते हुए उनमें निहित आधुनिकता बोध को सामने लाना है। व्यक्तिवाद, तार्किकता, बौद्धिकता, विज्ञानवाद, संशय, अनास्था, मूल्यहीनता, संबंधों का विघटन, जुड़े रहने की छटपटाहट, जिन्दगी का दुहरापन, खंडित व्यक्तित्व, अस्तित्व चेतना और पारिवारिक टूटन

जैसे बोधों ने समकालीन समय और समाज को बहुत गहरे से प्रभावित किया है। ये आधुनिकतावादी बोध हैं जो साहित्य में चित्रित होकर वर्तमान दशाओं को अभिव्यक्त कर रहे हैं। नाटकों में इन प्रवृत्तियों को जानकर वर्तमान के प्रश्नों का समाधान ढूंढना और हिन्दी के वर्तमान नाटकों की दिशा व दशा को जानना ही इस शोध का उद्देश्य है। यह शोध आलेख विद्यार्थियों, पाठकों व शोधार्थियों के लिए आधार का कार्य भी करेगा और साहित्य और समय की नब्ज समझने में सहायक होगा।

बीज शब्द (Key words) –

आधुनिकता, नाटक, हिन्दी, विसंगति, समसामयिक प्रश्न, पीढ़ी अन्तराल, आधुनिक परिवेश, अस्तित्व चेतना, दिशाहीनता, आम आदमी आदि।

शोध प्रविधि (Methodology) –

इस शोध में लिखित सामग्री को आधार बनाया गया है। हिन्दी के समकालीन नाटकों का अनुशीलन कर निष्कर्ष हेतु आवश्यक द्वितीयक स्रोत के रूप में सूचनाएं प्राप्त की गई हैं। आवश्यक सूचना को आगमन–निगमन प्रणालियों द्वारा ग्रहण कर संकलित किया है। असहभागी अवलोकन एवं द्वितीयक स्रोत से प्राप्त आंकड़ों को सापेक्षवादी ज्ञान मीमांसा पद्धति द्वारा विश्लेषण–संश्लेषण कर अन्तिम निष्कर्ष या मान्यता के रूप में निरूपित किया गया है।

शोध सारांश (Abstract) –

सन् 1950 के बाद हिन्दी नाटकों में स्वच्छंदता, रोमांटिक भाव बोध, परम्परा, मध्यकालीन मानसिकता आदि का अंत हो जाता है। इसके बाद के नाटक परिवेश के यथार्थ को चित्रित कर रहे हैं। इन नाटकों में नवीन चेतना, मानवता, राष्ट्रीयता, तार्किकता आदि भाव बोध मिलते हैं। इनमें आम आदमी की समस्याएँ, कुंठाएँ, संत्रास, घुटन, भविष्यहीनता, दिशाहीनता, अनास्था, खंडित व्यतिव, जिन्दगी का दुहरापन, वैयक्तिकता, विद्रोह, आर्थिक विषमता, सम्बंधों का विघटन आदि अभिव्यक्त है। ये आधुनिकता बोध के अर्थ सन्दर्भ हैं जो सन् 1938 ई. के ऊसर 'नाटक से वर्तमान तक के नाटकों में उद्घाटित है। मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल, विपिन कुमार अग्रवाल, रमेश बक्शी, मुद्राराक्षस, लक्ष्मीकांत वर्मा, विष्णुप्रभाकर, मणिमधुकर, डॉ. शंकर शेष, सुरेन्द्र वर्मा आदि के नाटकों में आधुनिकता बोध मिलता है। इनके नाटकों में अतीत के प्रसंगों, मिथकों, प्राचीन पात्रों आदि के माध्यम से वर्तमान अभिव्यक्त हुआ है। समकालीन नाटकों को समझने के लिए हमें इनकी व्याख्या आधुनिकता के लक्षणों के आधार पर करनी होगी।

विषय उपस्थापन –

भारत में आधुनिकता की प्रक्रिया 19वीं शताब्दी के मध्य से प्रारम्भ हुई। सामान्यतः लोग आधुनिक का अर्थ 'नूतन' या 'नवीन' से लेते हैं। आधुनिकता केवल कालगत अवधारणा नहीं है, यह एक प्रक्रिया है। आधुनिकता का वास्तविक अर्थ विगत सांस्कृतिक मूल्यों को अपने अन्दर समेटकर मानव की वर्तमान स्थिति और उसके भविष्य विषयक दायित्व की सक्रियता और चेतना को स्वीकार करना है। ''वस्तुतः नवीन ज्ञान–विज्ञान, टेक्नोलॉजी के फलस्वरूप उत्पन्न विषम मानवीय स्थितियों के नये, गैर रोमान्टिक और अमिथकीय साक्षात्कार का नाम आधुनिकता है।''[1]

आधुनिकता कई लक्षणों का सामूहिक नाम है। क्लासिकलवाद, रोमांसवाद, परम्परा, व्यवस्था आदि के प्रति प्रतिक्रिया तथा नवीन चेतना, नये मूल्यों की खोज, व्यक्तिवाद, तार्किकता, बौद्धिकता, विज्ञानवाद, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीयता, मानवता आदि भावबोध आधुनिकता की विशेषताएँ हैं। महाख्यानों के प्रति विशवास, संशय, अनास्था, मूल्यहीनता, सम्बंधों का विघटन, जुड़े रहने की छटपटाहट, जिन्दगी का दुहरापन, खंडित व्यक्तित्व आदि आधुनिकता के सन्दर्भ हैं।

हिन्दी नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दु काल से ही हो गया था। प्रसादोत्तर काल के नाटकों में स्वच्छंदता, रोमांटिक भाव बोध विदा हो जाते हैं। सन 1950 तक नाटकों में अन्य विधाओं की तरह आधुनिकता अभिव्यक्त होने लगी। इसकी पहल भुवनेश्वर कृत 'ऊसर' (1938 ई.) से मान सकते हैं। इस नाटक में पात्रों के जीवन की व्यर्थता का बोध होता है। इसमें मध्यमवर्गीय जीवन के खोखलेपन और सम्बंधहीनता को प्रस्तुत किया है। इसमें बेतुकी बातों से अकेलेपन को उभारा है। ''आलोचकों ने भुवनेश्वर प्रसाद के लघु नाटक ऊसर से आधुनिकता बोध का आरम्भ स्वीकार किया है।''[2] इनके दूसरे नाटक 'तांबे के कीड़े' में भी विसंगतिबोध, निरर्थकता, अजनबीपन, अपरिचय का गहरा बोध मिलता है। जगदीश चन्द्र माथुर कृत 'पहला राजा' में वैदिक और पौराणिक साहित्य के सूत्रों से आधुनिक जीवन की विडम्बनाओं को उभारा है। देवताओं की स्तुति, हवन एवं यज्ञों की निरर्थकता बताते हुए इसमें कर्म एवं परिश्रम पर बल दिया है। साथ ही भ्रष्ट राजनीति, दलबंदी, भ्रष्टाचार, पिछड़ी जाति का प्रश्न, राष्ट्रीय एकता, नारी–पुरुषों के नये सम्बंध उद्घाटित हुए हैं। 'लहरों के राजहंस' में मोहन राकेश ने पात्र नंद और सुन्दरी के सम्बंधों को लेकर आधुनिक मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित किया है। नंद आधुनिक द्विधाग्रस्त व्यक्ति है जो निर्णय और अनिर्णय के बीच झूलता है। नंद अपनी आन्तरिक आवश्यकता के कारण कभी सुन्दरी अर्थात प्रवृत्ति से, कभी बुद्ध अर्थात निवृत्ति से जुडकर अपनी सार्थकता खोजता है। नाटककार नंद के माध्यम से आज के मनुष्य की बेचैनी, तनाव और अन्तर्द्वन्द्वों को सम्प्रेषित करने मे सफल रहा है। नंद के माध्यम से यह बोध प्रकट होता है– ''अपने को एक ऐसे टूटे हुए नक्षत्र की तरह पाता हूँ जिसका कहीं वृत्त नहीं है, जिसकी कोई धुरी नहीं है।''[3] इसी प्रकार का नाटक 'आधे–अधूरे' है जिसमें मोहन राकेश ने वर्तमान जीवन की विडम्बनाओं को उद्घाटित किया हैं। नाटक का पात्र महेन्द्र नाथ व्यापार में घात खाकर अन्तर्विरोध ग्रस्त हो जाता है। पत्नी सावित्री नौकरी करके परिवार चलाती है, इसके मन में किसी पूर्ण पुरूष की तलाश है। पर उसे हरेक में अपूर्णता मिलती है– ''सब के सब... सब के सब... एक से। बिल्कुल एक से हैं आप लोग। अलग–अलग मुखौटे, पर चेहरा? चेहरा सबका एक ही।''[4] महेन्द्रनाथ का निर्वासित व फालतू होने का बोध, सिंघानिया की अतृप्त कामना, सावित्री की महत्त्वाकांक्षा, पारिवारिक विघटन, अस्तित्व चेतना आदि आधुनिकता बोध हैं। ''आधे–अधूरे का रचना विधान संक्रांतिग्रस्त आधुनिक जीवन की संवेदना से उपजा है। इसलिए समकालीन जीवन की लगभग समस्त व्यक्तिगत विसंगतियाँ इस नाटक में संवेदना के स्तर पर जीवित और अभिव्यक्त हैं।''

लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में आधुनिकता बोध आद्योपांत व्याप्त है। 'मादा कैक्टस', 'सूर्यमुख', 'मिस्टर अभिमन्यु', 'नरसिंहकथा' एवं 'राम की लड़ाई' आदि नाटकों में समकालीन ही नहीं, युगीन संवेदना है। 'मादा कैक्टस' यह दिखलाता हैं कि हम जीवन को जिए बिना उसके बारे में निरर्थक धारणा बना लेते हैं। नाटक का पात्र अरविंद अपनी धारणा मे कैद है। इसलिए उसका जीवन और कला दोनों ही कृत्रिम और नकली साबित होते हैं और अंत में वह पाता है कि उसका जीवन रस विहीन और निस्सार है। 'सूर्य मुख' में उत्तर महाभारत कालीन कथा के माध्यम से मनुष्य के जीवन में आई विषमताओं, मूल्य विघटन से साक्षात्कार करवाया है। 'मिस्टर अभिमन्यु' में नायक राजन के माध्यम से आधुनिक व्यक्ति के द्वन्द्व ओर संवेदना को उभारा है। राजन आज की भ्रष्ट व्यवस्था को तोड़ना चाहता है किन्तु समाज के भ्रष्ट राजनीतिज्ञ, उद्योगपति एवं परिवार के लोग उसे चक्रव्यूह में फँसाया रखना चाहते हैं। इस नाटक में व्यवस्था की त्रासदी को चित्रित किया है।

'तीन अपाहिज' में नाटककार विपिन कुमार अग्रवाल ने देश की पंगु मानसिकता को रेखांकित किया है। देश, समाज और मनुष्य की आजादी की अवस्थाओं पर व्यंग्य किया गया है। इस नाटक की विसंगति में आधुनिकता उभर कर आती है। 'चिंदियों की झालर' में अमृतराय ने बेहिसाब बढती आबादी पर व्यंग्य किया है। विडम्बना यह है कि आज कोई किसी की मृत्यु से दुःखी नहीं होता, बल्कि मृत्यु उसके लिए समाचार है। देश में बढ़ती हुई जनसंख्या, आर्थिक संकट और बदलते सामाजिक ढाँचे ने मनुष्य के बीच के रागात्मक सम्बंध को खत्म कर दिया है। पात्र नन्दन के कथनों से यह अजनबीयत प्रकट होती है– ''कुलिया जैसा तो घर है... उसमें भी हफ्तों किसी की शक्ल न दिखाई दे... अजीब बात है।''[6] रमेश बक्शी कृत 'देवयानी का कहना है' नाटक स्त्री–पुरुष के सम्बंधों पर आधारित है। इस नाटक में नायिका देवयानी परम्परा का विरोध करती है। यौन इच्छाओं की पूर्ति के लिए किसी नैतिकता, नियम, संस्कार को नहीं मानती। शादी उसके लिए एक ढाल हैं, वह कहती है– ''शादी केवल एक पास है जिसको हाथ में रखने से खुले आम घूमने, एक साथ बिस्तर में सोने और दुर्घटना के समय सामाजिक विरोध न होने का सर्टीफिकेट मिल जाता है।''[7] इसी प्रकार के सम्बंध मुद्राराक्षस कृत 'तिलचट्टा' में अभिव्यक्त हुए हैं। नाटककार ने इस नाटक में स्त्री–पुरुष सम्बंधों की

निर्मम चीर–फाड़ के साथ वर्तमान युग के राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक परिवेश में व्याप्त विसंगति और अव्यवस्था में पिसते और कराहते हुए मनुष्य की चीख को पकड़ने का प्रयास किया गया है। नाटक के पात्र देव और केशी के जीवन की त्रासदी को उजागर किया है। देव अपनी पत्नी के अनैतिक सम्बंधों को रोक नहीं सका और इससे कुंठाओं से भर जाता है। तिलचट्टा मानव मन की परिस्थितियों को उजागर करता है, उसमें मानवीय नियति की त्रासद स्थितियों को आधुनिकता बोध के रूप में दर्शाया है।

'रोशनी एक नदी है' में लक्ष्मीकांत वर्मा ने समसामयिक प्रश्नों को उद्घाटित किया है। आधुनिक जीवन की विसंगति, दिशाहीनता, पहचान खोते मनुष्य–छटपटाते मनुष्य की पीड़ा इसमें अभिव्यक्त है– ''तुम सब जुलूस हो, जुलूस... तुम नारा हो। हड़ताल हो। भुखमरी हो। ...लेकिन आदमी कहाँ हो।'' इसमें कवेल दो पात्र ही अनेक भूमिकाओं में आते हैं क्योकि परिस्थितियों के चक्रव्यूह में सब समान रूप से ही पीड़ित होते हैं। मुद्राराक्षस कृत 'योर्स फेथफुली' मे कार्यालयों मे काम करने वाले बाबुओं की यंत्रणा और जकड़ी व्यवस्था के अधीन जिन्दगी का चित्रण है। अफसर, क्लर्क और चपरासी का जीवन समसामयिक जीवन का चित्र प्रस्तुत करता है। क्लर्क आजीविका के लिए हाथ कटा लेता है, यह कटा हाथ व्यक्ति के कुंठित क्रोध और दबे विरोध का प्रतीक है। यह नाटक सरकारी कार्यालयों के भ्रष्ट और यांत्रिक वातावरण तथा उसमें घुटते पंगु जीवन को प्रस्तुत करता है। आधुनिक जीवन की विसंगति, तनाव, द्वन्द्व, पीड़ा इसमें अभिव्यक्त है। 'टूटते परिवेश' विष्णु प्रभाकर का आधुनिकता बोध का नाटक है। इस नाटक में संयुक्त परिवार के विघटन की मार्मिक अभिव्यक्ति के साथ परिवर्तित समाज का चित्रण है। इसमें एक और नयी पीढी की क्षमता का स्वीकार है तो दूसरी और वर्जनशील और अतिरिक्त स्वतंत्रता के बीच चुनाव का द्वन्द्व भी। इसमें अस्तित्ववादी विचारधारा भी मिलती है। पारिवारिक टूटन का कारण पीढी अन्तराल है। पात्र विवेक कहता है– ''पापा, आपका जमाना कभी का बीत गया। अब बीते जीवन की धड़कने सुनने से अच्छा है कि वर्तमान सांसों की रक्षा की जाय।''[8] मणिमधुकर द्वारा रचित नाटक 'रस गन्धर्व' में आज की राजनीतिक–सामाजिक स्थितियों की अर्थहीनता और विसंगति वर्णित है। इसमें अ,ब,स,दपात्र गंधर्व है जिनका आधुनिक समाज में राजनेता और प्रशासनिक अधिकारी दोनों ही शोषण करते हैं। चारों तरफ आस्था, मूल्यों, विश्वासों एवं सद्भावों का खून हो रहा है। अवसरवादिता, भाई–भतीजा वाद, राजनीतिक कुचक्रों आदि ने मानवीय मूल्यों को दरका दिया है पात्र 'द' कहता है– ''अपनी आत्मा के अन्तःपुर में हम, न अंधे हैं, न गूंगे, न बहरे, सिर्फ नपुंसक हैं।''[9] 'एक और द्रोणाचार्य' डॉ. शंकर शेष का आधुनिक शिक्षा व्यवस्था को स्पष्ट करने वाला नाटक है। इस नाटक में महाभारत कालीन स्थितियों एवं पात्रों के माध्यम से आधुनिक परिवेश एवं चरित्रों का उद्घाटन किया है। पात्र अरविन्द ईमानदार एवं सिद्धान्तवादी है परन्तु वह पत्नी के आग्रह पर व्यवस्था से समझौता कर स्वयं द्रोणाचार्य बन जाता है। पैसा सभी मूल्यों को दबाता है। यह आधुनिकता बोध इस नाटक में है, यथा–

''लीला : प्रिंसिपल नहीं बनोगे?
अरविंद : कीमत जानती हो?
लीला : बिना कीमत दिए कुछ मिलता भी है।''[10]

'कोमल गांधार' में शंकर शेष ने महाभारत कालीन कथा के व्याज से पारिवारिक विघटन, आधुनिक जटिलताओं से उत्पन्न जीवन संघर्ष, घुटन, अनास्था, क्षण मोह, अस्तित्व चेतना, बौद्धिकता जैसे आधुनिकतावादी लक्षणों को रूपायित किया है। इसके केन्द्र में राजनीति है, मनुष्य नहीं। भीष्म की राजनीति ने सामाजिक जीवन में मूल्यों एवं आदर्शो की अवहेलना करके गांधारी के कोमल भावों को सूखा डाला है। इसीलिए गांधारी अपाहिज भावों वाली पीढी का निर्माण करती है। 'प्रजा ही रहने दो' में गिरिराज किशोर ने भी महाभारतकालीन कथा को आधार बनाया है। इस नाटक में महाभारत युद्ध के कारण एवं दुष्परिणामों के माध्यम से वर्तमान राजनीति की मूल्यहीनता को चित्रित किया है। नाटक के पात्र आधुनिक मनुष्य के प्रतीक हैं। धृतराष्ट्र अनिर्णय–अनिश्चय की स्थिति में जूझते शासक का, द्रौपदी प्रजा का, दुर्योधन निरकुंशता का प्रतीक है।

सुरेन्द्र वर्मा के नाटक 'सेतुबंध' में नारी–पुरुष के प्रेम सम्बंधों को आधुनिक अवधारणा के अनुसार प्रकट किया है। यहां कहा गया कि जैसे भावना के अभाव में शारीरिक सम्बंध निरर्थक है उसी प्रकार अनचाहे पति के साथ पत्नी का प्रेम भी अमान्य है। पात्र प्रवरसेन के माध्यम से आधुनिक मनुष्य की बेचैनी, छटपटाहट, आक्रोश, अस्तित्व चेतना व्यक्त हुई है। प्रभावती के माध्यम से स्त्री बोध रूपायित हुआ है। वह कहती है– ''माँ हूँ, लेकिन स्त्री भी तो हूँ। क्योंकि माँ हूँ इसलिए स्त्री होने का अधिकार... नहीं।''[11] इसी प्रकार इनके दूसरे नाटक 'द्रौपदी' में महाभारतकालीन द्रौपदी के पांच पतियों के मिथक को आधुनिक जीवन सन्दर्भ के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटक का नायक खंडित व्यक्तित्व वाला है इस कारण परिवार का वातावरण बासी और दमघोटू हो जाता है। आधुनिक भौतिकवादी जीवन, पैसे की भूख, खंडित व्यक्तित्व, सम्बंधों में रुखापन, जीवन का अर्थ तलाशते स्त्री–पुरूष आदि समस्याएँ इस नाटक से उभर कर आती हैं। सुरेन्द्र वर्मा के नाटक 'शकुंतला की अंगूठी' में पौराणिक प्रसंगों के माध्यम से आज के स्त्री–पुरुष सम्बंधों में हो रहे बदलाव पर प्रकाश डाला गया है। इसमें आधुनिक मनुष्य की नियति, विडम्बना, आर्थिक विषमता, सम्बंधों का विघटन व्यक्त हुआ है। आधुनिक नियतिवादी स्थिति का चित्रण पात्र कुमार के कथन से होता है– ''दुष्यंत के लिए बच्चा जरूरी है। उसे राजपाट के लिए उत्तराधिकारी चाहिए।... और मेरे बाद कौन इस कुल में... मैंने क्या किया है अपने बाप के लिए, तो मेरा बेटा साला मेरे लिए करेगा?''[12]

स्पष्ट है कि जो आधुनिकता 1938 ई. में पहले–पहल 'ऊसर' नाटक में दिखी थी, वह समकालीन नाटकों में अभिव्यक्त हो रही है। अस्तित्वादी दर्शन ने हिन्दी नाटकों में आधुनिकता का प्रवेश करवाया। आधुनिक नाटक खुले होते हैं। इनमें समस्याओं का समाधान नहीं दिया जाता। इन नाटकों का उद्देश्य जनजीवन के अर्थ मर्म तक पहुँचना होता है। इनमें जीवन का अन्वेषण मिलता है। आम आदमी की समस्याएँ, कुंठाएँ, भविष्यहीनता, दिशाहीनता, विद्रोह, संत्रास, घुटन, अनास्था, मूल्यहीनता, खंडित, व्यक्तित्व, जिन्दगी का दुहरापन, वैयक्तिकता, नवीन चेतना आदि भाव बोध समकालीन नाटकों में चित्रित हो रहे हैं।

यदि हम वर्तमान समय और समाज को समझना चाहते हैं तो हमें समकालीन नाटकों में झांकना होगा। पर इन नाटकों की व्याख्या बिना आधुनिकता के लक्षणों को जाने, नहीं हो सकती। आधुनिकता को समझकर हम जान सकते हैं कि समकालीन नाटक अपने परिवेश के प्रति पूर्ण सजग हैं। अतीत के प्रसंगों, पात्रों एवं परिस्थितियों के माध्यम से ये नाटक वर्तमान को ही अभिव्यक्त कर रहे है जो आधुनिकता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का प्रमाण है।

संदर्भ–

1. डॉ. बच्चनसिंह – आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1986 ई., पृष्ठ–37
2. डॉ. रामचन्द्र तिवारी – हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणासी, 1992 ई., पृष्ठ–267
3. मोहन राकेश – लहरों के राजहंस, लोक भारती प्रकाशन, इलाहबाद, पृष्ठ–137
4. मोहन राकेश–आधे अधूरे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–109
5. नरनारायणराव–आधुनिक हिन्दी नाटकःएक यात्रा दशक, भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली, 1977 ई., पृष्ठ–24
6. अमृत राय – चिंदियों की झालर, हंस प्रकाशन, इलाहबाद, 1979 ई., पृष्ठ–11
7. रमेश बक्शी – देवयानी का कहना है, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, कृष्णनगर, नयी दिल्ली, पृष्ठ–8
8. विष्णु प्रभाकर – टूटते परिवेश, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ–54
9. मणिमधुकर – रसगन्धर्व, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975 ई., पृष्ठ–18
10. डॉ. शंकर शेष – एक और द्रोणाचार्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–33
11. सुरेन्द्र वर्मा – तीन नाटक, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1999 ई., पृष्ठ–30
12. सुरेन्द्र वर्मा –शकुंतला की अंगूठी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005 ई., पृष्ठ–70

डॉ. गोपीराम शर्मा
सहायक प्रोफेसर हिन्दी , डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)